समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में कामकाजी स्त्री : दशा और दिशा

*डॉ. प्रदीप श्रीधर

शोधपत्र-हिन्दी

किसी देश के सामाजिक व आर्थिक स्तर को समझने के लिये साहित्य का दर्पण देखना जरूरी हो जाता है, क्योंकि एक साहित्यकार की काल्पनिक रचनाओं का वास्तविक आधार समाज में घट रही घटनायें और परिस्थितियाँ होती हैं। बीते दो-तीन दशकों की ओर दृष्टिपात किया जाय तो ज्ञात होता है कि साहित्यकारों का रुझान स्त्री-विमर्श और स्त्री कथा, उपन्यास लेखन पर अधिक रहा है। मुख्य रूप से महिला साहित्यकार अपना लेखन कार्य स्त्री विषयक साहित्य पर केन्द्रित कर रही हैं, जिनमें ममता कालिया, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, चन्द्रकान्ता, क्षमा शर्मा आदि लेखिकाओं का नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय है।

प्राचीन काल से ही स्त्री अनेक प्रकार के शारीरिक व मानसिक शोषण के तले जीती आई है। शिक्षा का प्रसार होने के पश्चात् स्त्रियों में अपने अधिकार व अस्तित्व को लेकर कुछ चेतना आई और परिवर्तन की हवा चली जिसने स्त्री को अपने बल पर कुछ सोचने और करने की प्रेरणा व अवसर प्रदान किया। आधुनिक समाज के सुशिक्षित मध्यवर्ग की मानसिकता में भी स्त्रियों के प्रति काफी हद तक बदलाव आया है तथा इसमें निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। कार्यशील नारी को समाज पूर्ण स्वीकृति दे चुका है और स्त्री भी अपने इस नये अवतार में अधिक आत्मविश्वासी, निर्णय लेने में स्वतंत्र व आर्थिक रूप से सबल होकर सामने आई है। स्त्री के व्यक्तित्व के इस पक्ष को उभारती नवोदित लेखिका लवलीन की कहानी 'एक थी विजया' स्त्री के दृढ़ निश्चय और सशक्त व्यक्तित्व को परिभाषित करती है, जिसके अनुसार स्वाति के लिये उसका कार्यक्षेत्र परिवार और संबंधों से अधिक महत्वपूर्ण है। वहीं दूसरी ओर परिवार की मान्यताओं और पारम्परिक मूल्यों में लड़ती एक नौकरी पेशा महिला का चित्रण करती अल्पना मिश्र की कहानी 'पड़ाव' परिस्थितियों से लड़ने व अस्तित्व को बनाये रखने की सफल चेष्टा है।

स्त्री का कामकाजी व्यक्तित्व स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही अस्तित्व में आ गया था तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में व्याप्त आर्थिक संकटों से जूझ रहे परिवारों को इस परिस्थिति से निपटने तथा खर्चा चलाने के लिए अधिक से अधिक अर्जक सदस्यों की आवश्यकता हुई तथा एकल परिवारों में स्त्रियाँ ही अतिरिक्त अर्जनकर्ता के रूप में सामने आईं लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्त्री का कार्यक्षेत्र में आकर नौकरी करना कोई विवशता नहीं है बल्कि स्त्री का अपने बलबूते पर कुछ कर गुजरने की चाहत का परिणाम है। कारपोरेट सेक्टर की नौकरियाँ आज की आधुनिक स्त्री की पहली पसन्द हैं। निजी क्षेत्रों में आकर्षक वेतन तथा अन्य सुविधाओं ने युवा पीढ़ी को आकर्षित किया है, आज से करीब दो दशक पहले की बात की जाय तो स्त्रियों के लिये शिक्षा, चिकित्सा तथा कुछ परम्परागत क्षेत्रों को ही कामकाज के लिये उपयुक्त माना जाता था जहाँ एक निश्चित रूपरेखा के तहत काम होता था। उदाहरणार्थ राजनीति का क्षेत्र अन्य कार्यक्षेत्रों की अपेक्षा केवल कुछ घण्टों की मांग नहीं करता। इस बात का कोई समय निर्धारित नहीं है कि जनसेवी को कब जनता की सेवा के लिये उपस्थित होना पड़े। परन्तु फिर भी महिलायें राजनीति के क्षेत्र की चुनौतियों को सहर्ष स्वीकार कर उनका सामना भी कर रही हैं तथा अधिक से अधिक संख्या में चुनकर राजनीति के क्षेत्र में आ रही हैं। 2009 के लोकसभा चुनावों में 556 महिला उम्मीदवारों ने अपना भाग्य आजमाया तथा उनमें से 51 महिलायें सांसद चुनी गई, इसके साथ ही नौ महिलाओं को मंत्रिमण्डल में चुना गया।

वर्तमान समय में सभी प्रकार के परम्परागत तथा गैर परम्परागत कार्यक्षेत्रों में स्त्रियों की घुसपैठ है तथा कार्यक्षेत्र भी इन कार्यशील नारियों के लिये अपने द्वार खोलकर सुअवसर प्रदान कर रहा है। स्त्रियों का अधिक से अधिक संख्या में कार्यक्षेत्र की ओर अग्रसर होना इस बात का द्योतक है कि हमारे समाज की सोच अब विकसित होने लगी है। लेकिन फिर भी भारतीय ग्रामीण समाज अभी भी कई मानसिक संकीर्णताओं से जकड़ा हुआ है। कारण है पुरानी पीढ़ी में व्याप्त अशिक्षा और उनके द्वारा अपनी पीढ़ी में व्याप्त अशिक्षा और उनके द्वारा अपनी पीढ़ी को हस्तान्तरित किये जा रहे संस्कार। देखा जाय तो स्त्री को पराधीन और निर्बल बनाने के प्रयास उनके घर परिवार से आरम्भ हो जाते हैं नतीजन हर स्त्री इस पराधीनता को नियति मानने के लिये बाध्य हो जाती है और जो स्त्रियाँ इसे स्वीकार करने से इंकार करती हैं उनके लिये परिवार और समाज दोनों ही खिलाफत में खड़े नजर आते हैं। समाज और परिवार आज भी सदियों पुरानी नीति के तहत स्त्री को दया, सहानुभूति और संरक्षण प्रदान करना चाहते हैं। लेकिन आज के सन्दर्भ में स्त्री, संरक्षण नहीं भयमुक्त समाज और अपनी स्वेच्छा से कैरियर चुनने की आजादी

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, क. मुं. हिन्दी विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

चाहती है ताकि वे अपनी शख्सियत खुद बना सकें। परन्तु सामान्यत: ऐसा हो नहीं पाता, माता-पिता और अन्य परिवारीजन उनके ऊपर जीवन भर अपनी इच्छायें थोपकर कर्तव्य के नाम पर उनका शोषण करते रहते हैं। कार्य क्षेत्र में भी प्राय: स्त्रियों का स्वागत नहीं होता वहाँ भी स्त्रियाँ दोयम दर्जे की नागरिकता को जी रही हैं। चाहे वह सरकारी क्षेत्र हो या गैर सरकारी, मजदूरी करने वाली स्त्री हो या उच्च पद पर कार्य करने वाली स्त्री-

''एक स्त्री हर क्षेत्र में दोयम दर्जे में बैठने को बाध्य की जाती है कि तुम्हारी यही नियति है। यह भेदभाव सिर्फ निम्नवर्गीय स्त्रियों के साथ ही नहीं बरता जाता इसकी चपेट में वे स्त्रियाँ भी हैं जो सरकारी गैर सरकारी विभागों में ऊँचे-ऊँचे पदों पर कार्यरत हैं।[1]

स्त्रियों का संघर्ष हर स्तर पर जारी है लेकिन सराहनीय तथ्य यह है कि स्त्रियाँ अपने हक की लड़ाई लड़ने में किसी भी प्रकार की चुनौती स्वीकारने में डर नहीं रही हैं और स्वयं को विश्वमंच पर स्थापित करने में सक्षम हो रही हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण शीतल पेय पेप्सी की चेयरपर्सन इन्दिरा नुई, आई सी आई सी आई की नवनियुक्त सीईओ चन्दा कोचर आदि हैं वहीं दूसरी ओर लोक सभा की प्रथम महिला स्पीकर मीरा कुमार और सबसे कम उम्र की सांसद अगाधा संगमा ने भी राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं की आदर्श स्थिति सुनिश्चित की है।

स्त्रियों के इस बदलते रूप को पुरुष वर्चस्ववादी समाज भी अब स्वीकारने लगा है क्योंकि अभी तक जिन क्षेत्रों को केवल पुरुषों के लिये सुरक्षित किया गया था वहाँ भी स्त्रियों ने अपना कब्जा जमाना आरम्भ कर दिया है। इसका ताजा-तरीन उदाहरण मीरा कुमार हैं जो भारत के इतिहास में पहली बार प्रथम महिला स्पीकर के पद पर कार्यरत हुई हैं। समाचार-पत्र अमर उजाला के जून के एक अंक में मैंने पढ़ा कि पहली बार स्पीकर के रूप में पद भार संभालने के बाद कई सांसद उन्हें मैडम स्पीकर के बजाय स्पीकर सर कहते सुने गये। लोगों के मन मस्तिष्क में अभी भी यह धारणा कायम है कि स्त्रियाँ हर क्षेत्र के लिये उपयुक्त नहीं है लेकिन इन मान्यताओं को तोड़ते हुए आज स्त्री शीर्ष पर अपना परचम लहराने में सब प्रकार से सक्षम हो रही है।

गैर परम्परागत कार्यक्षेत्र अपने कर्मचारियों से नियत समय के साथ अतिरिक्त समय और श्रम की भी माँग करते हैं, जिसे दे पाने में प्राय: स्त्रियाँ असमर्थ होती हैं जिसका कारण उनकी निर्बलता और क्षीण मानसिक शक्ति से लगाया जाता है लेकिन यह आरोप सर्वथा अनुचित है, आफिस में काम करने के साथ स्त्रियों को गृहस्थी के कामों के लिये कम से कम 3-4 घण्टों का समय अनिवार्यत: देना ही पड़ता है। इस सन्दर्भ में वरिष्ठ लेखिका प्रभा खेतान अपना मत प्रस्तुत करते हुए लिखती हैं-

''स्त्री के लिये काम के घण्टे अधिक हो गये हैं। यह एक प्रकार की अदृश्य कीमत है जिसे स्त्री चुका रही है। अर्थशास्त्री जिसे बढ़ी हुई कार्यकुशलता कहते हैं वह एक प्रकार से वैतनिक अर्थ-व्यवस्था की कीमत को अवैतनिक अर्थव्यवस्था की ओर स्थानान्तरित करने की प्रक्रिया है। मसलन, अस्पताल में यदि रोगी को दो दिन में छुट्टी दे दी जाय तो स्वाभाविक है जिस सेवा कार्य को अस्पताल की नर्स करती, उसका बोझ स्त्री पर पड़ेगा। अस्पताल के पैसे तो बचते हैं मगर घर में मुफ्त किये गये श्रम की कीमत नहीं आंकी जाती।''[2]

इस बात में अक्षरश: सत्यता है कि स्त्री के घरेलू श्रम को काम की श्रेणी में नहीं रखा जाता और जब इसे काम की श्रेणी में नहीं गिना जाता तो इसका मेहनताना देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसी क्रम में सरला माहेश्वरी अपने नारी विमर्श में संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट (1980) का उल्लेख करती हैं-

''महिलायें दुनियाँ की आबादी का आधा हिस्सा हैं, कुल काम का दो-तिहाई वे करती हैं लेकिन दुनिया की आमदनी का सिर्फ दसवाँ हिस्सा उन्हें मिलता है और दुनिया की सम्पत्ति के सौवें हिस्से से भी कम सम्पत्ति महिलाओं के पास है।''[3]

लेखिका लवलीन की कहानी 'एक थी विजया' ऐसी ही एक आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है। नायिका स्वाति पत्रकार है और अपने खुले विचारों वाली मानसिकता के चलते घर और कार्यक्षेत्र में किसी भी प्रकार का दबाव या परम्पराओं को मानने की अन्धभक्ति नहीं करती। विवाहिता होने के बावजूद सुहागचिन्हों को धारण करना उसे महत्वपूर्ण नहीं लगता क्योंकि विवाह उसके जीवन में सीमित महत्व रखता है-

''शादी जीवन का 25% अंग है। ऐसा मेरा मानना है; बाकी पचहत्तर परसेन्ट जिन्दगी में मैं अपने काम को अहमियत देती हूँ। साहित्य सृजन को अहमियत देती हूँ पढ़ने-लिखने को अहमियत देती हूँ।''[4]

राजस्थान विश्वविद्यालय में आयोजित एक सेमिनार के दौरान स्वाति की मुलाकात अंग्रेजी के एक प्रोफेसर अखिल सिन्हा से होती है। वे उसके खुले विचारों को लेकर आश्चर्यचकित से रह जाते हैं। स्वाति अपना मत पहले ही स्पष्ट कर चुकी कि शादी उसके लिये निश्चित सीमा तक ही महत्वपूर्ण है लेकिन स्वाति की यह बात प्रो. सिन्हा को निराश और परेशान कर जाती है। प्रो. सिन्हा की निराशा प्रतीक है इस बात की जो ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व के दोहरे सत्य की परतें खोलती हैं।

''खासे पढ़े लिखे पुरुष भी स्त्रियों के मामले में फिक्सड इमेज के जड़ संस्कार के शिकार होते हैं। स्त्रीत्व के अनेकानेक पहलू और भूमिकाओं से अनजान।''[5]

स्त्री की बोल्ड छवि को सामान्यत: स्वीकार कर पाना पुरुषों के लिये कठिन होता है क्योंकि वे स्त्री को प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखने लगते हैं। स्त्रियाँ उन्हें घर का प्रबन्धन, नियंत्रण करती हुई अच्छी लगती हैं। नीला प्रसाद की कहानी 'उनकी हार' इस तथ्य को उभारने में काफी हद तक सफल हुई है। रुचि दफ्तर में अधिकारी के पद को संभाल रही है, समर और रुचि के बीच प्रेम सम्बन्ध हैं। जल्द ही दोनों परिणय सूत्रों में बँधने वाले हैं।

''समर ने पूछा अगर उसे जिन्दगी में प्रेमी या नौकरी में से किसी एक को चुनने की नौबत आ जाए, तो वह किसे चुनेगी?. ... और रुचि ने बिना हिचक से उत्तर दिया 'नौकरी को'।''[6]

समर ने एक कल्पित प्रश्न पूछा जिसका रुचि ने पूर्ण व्यावहारिक

उत्तर दिया जिसे सुनकर समर सकते में आ गया क्योंकि उसने रुचि से ऐसे उत्तर की आशा नहीं की थी। रुचि को वह अपनी भावी पत्नी के रूप में देखता है जो उसकी व उसके परिवार की सेवा में अपना जीवन खपा डाले लेकिन रुचि अपनी पहचान अपनी नौकरी को किसी भी तरह छोड़ देने के लिये तैयार नहीं है–

''समर तुम्हारे पास इतना बड़ा घर है। उस घर में रहने वाले प्राणियों से दो गुने हैं नौकर, चाकर, दरबान, रसोइया और न जाने कौन-कौन तो क्या फर्क पड़ता है अगर उस घर में ऐसी बहू आ जाए जो घर-रसोई को पूरा वक्त देने के बजाय थोड़े वक्त घर से बाहर भी निकलती हो?''[7]

रुचि और समर का रिश्ता सिर्फ इसलिये समाप्त हो गया क्योंकि उसने हर हाल में अपनी पहचान को बनाये रखना चाहा और कोई समझौता नहीं किया। समर ने रुचि को उसके जिन गुणों और काबिलियत की वजह से अपनी जीवन संगिनी के रूप में देखा उन्हीं को वह त्याग देने की अपेक्षा रखता है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या स्त्री की शिक्षा और कामकाजी होना सिर्फ इतना महत्व रखता है कि उसे एक अदद अच्छा घर प्राप्त हो सके?

प्रभा खेतान के उपन्यास छिन्नमस्ता की प्रिया के संघर्ष की कहानी भी रुचि की भाँति ही है। प्रिया भी अपनी शख्सियत के आगे किसी को नहीं आने देती, यहाँ तक कि एक मात्र पुत्र का मोह भी उसे अपने कार्यक्षेत्र के मार्ग से भटका नहीं पाता। पति नरेन्द्र उससे सिर्फ यह आशा रखता है कि वह घर की चार दीवारी के बीच स्वयं को सीमित कर ले, लेकिन महत्वाकांक्षी प्रिया इस प्रकार का कोई समझौता करने को तैयार नहीं जो इतनी मेहनत से बनाये गये उसके व्यवसाय को चौपट करके रख दे। नरेन्द्र पुरातनपंथी परम्पराओं पर चलने वाला व्यक्ति है जो औरत को परिचायिका से अधिक कुछ नहीं मानता।

प्रिया को वह अपनी सहधार्मिणी न मानकर घर में सजायी हुई निर्जीव वस्तु समझता है जिसे वह जब चाहे जिस तरह चाहे इस्तेमाल कर सके और वह नरेन्द्र के हर अत्याचार को अपनी नियति मान कर बिना उफ करे सहती चली जाये। लेकिन प्रिया अपने दम पर कमाये अपने आत्मविश्वास के बलबूते पर दुनिया भर से अकेले लड़ जाने को तैयार हो जाती है। नरेन्द्र की धमकी भी उस पर बेअसर रहती है–

''मुझे तुम्हारा फलसफा नहीं सुनना और न ही तुमसे बहस करनी है तुम बस एक बात सुन लो। यदि आज तुम लन्दन गईं तो लौटकर फिर इस घर में कभी मत आना, कभी नहीं।''[8]

नरेन्द्र की मानसिकता प्रिया की सफलता को आत्मसात नहीं कर पाती क्योंकि उसके मस्तिष्क में स्त्री की जो पारम्परिक छवि बैठी हुई है उसमें प्रिया का व्यक्तित्व कहीं सटीक नहीं बैठता, साथ ही एक पुरुष का अहम इस तथ्य को भी अस्वीकार करता है।

''फिलिप ने हँसते हुये नरेन्द्र से कहा, ''लगता है कि आपकी पत्नी इस काम को आपसे ज्यादा जानती हैं।'' नरेन्द्र का चेहरा भक से जलकर बुझ गया था।''[9]

नरेन्द्र जैसी संकीर्ण मानसिकता वाले पुरुष इस बात को सहर्ष जल्दी आत्मसात नहीं कर पाते कि जिस कार्यक्षेत्र में वे अभी तक उदाहरण स्वरूप रहें हो वहाँ की सत्ता अनायास ही किसी स्त्री के हाथ में जाती दिखे। लेकिन कभी-कभी परिवार का असहयोग भी स्त्रियों के लिये सकारात्मक प्रेरकों की भूमिका निभा देता है। चन्द्रकान्ता के उपन्यास 'ऐलान गली जिन्दा है' की दिव्या एक टूरिस्ट गाइड का काम करती है। परिवार की बड़ी पुत्री होने के कर्तव्य का निर्वाह भी पूरे मनोयोग से कर रही है, जीवन की कठिन सच्चाईयों का सामना करते-करते उसकी सोच छोटी उम्र में ही काफी परिपक्व हो गई है इसलिए अपनी नारी सुलभ विशेषताओं को भुलाना उसकी मजबूरी है–

''धूप पानी में झुलसते भींगते अपने आपको काफी हद तक भूलना सीखी हूँ। यही याद रखती हूँ कि काम करना है और माता-पिता की उम्मीदों को पूरा करना है। ऐसे में औरतें हमारी फिल्मों वाली नाजुक कली कहाँ रह पाती हैं? वक्त से पहले मुरझाने को अभिशप्त होती हैं।''[10]

दिव्या उत्तरदायित्वों को ढोने के प्रयास में स्वयं को भुलाने के लिए मजबूर है लेकिन फिर भी उसके आत्मविश्वास में कहीं कमी नहीं है। व्यक्ति का आत्म-विश्वास और उसकी सकारात्मक सोच ही उसे सही दिशा-निर्देश देने में सहायक होती है। 'आपका बन्टी' की शकुन एक तलाकशुदा महिला है तथा पुत्र बंटी के साथ महाविद्यालय द्वारा मिले आवास में अकेली जीवनयापन कर रही है। परित्यक्ता होने के कारण समाज की दृष्टि में वह दया और सहानुभूति की पात्र भले ही हो लेकिन शकुन का आत्मविश्वास और आत्म सम्मान उसे अपनी नजरों में सदैव ऊँचे स्थान पर रखता है। तलाक शुदा होने को लेकर वह हीन भावना से ग्रस्त नहीं रहती बल्कि समाज के पुराने मिथकों को तोड़ते हुए डॉ. जोशी के साथ नये जीवन की शुरुआत करती है, जिसमें उसका मातृत्व भी आड़े नहीं आने पाता–

''शकुन चक्की पीस-पीस कर बेटे का जीवन बनाने में अपने आपको स्वाहा कर देने वाली माँ नहीं थी; बल्कि स्वतंत्र व्यक्तित्व आकांक्षायें और आजीविका के साधनों से तृप्त माँ थी।''[11]

आर्थिक सबलता से प्राप्त आत्मविश्वास के बल पर प्रिया (छिन्नमस्ता) और शकुन अपनी मर्जी का जीवन जीने के लिये स्वतंत्र व सक्षम निर्णय लेने की क्षमता रखती हैं तथा किसी की छोटी-सी दखलअन्दाजी भी सहन नहीं करतीं–

''मैं तुम्हारी बहुत इज्जत करती हूँ। अपनी माँ से ज्यादा. ... पर माँ को भी मैंने कभी अपनी बातों के बीच में नहीं बोलने दिया... मुझे याद नहीं वे कभी बोली भी हों। यह अधिकार तो मैं किसी को दे नहीं सकती।''[12]

भारतीय परिवारों में प्रारम्भ से ही स्त्री के परिपोषण का लक्ष्य, त्याग, सहिष्णुता एवं कर्तव्य बोध की नियति रखकर किया जाता है। कारण स्त्रियों को घर परिवार तक सीमित रखने की मंशा से प्रेरित होता है। चूँकि प्राचीनकाल से ही धन-सम्पत्ति पर महिलाओं के कोई अधिकार सुनिश्चित नहीं किये गये थे इसलिये वे भी इस प्रताड़ना को पूरे जीवन झेलने के लिये विवश थीं। कामकाज ने स्त्रियों का आर्थिक पक्ष मजबूत करने के साथ-साथ रूढ़ियों व

पुरातन मान्यताओं के द्वारा शोषित न होने की तथा उनका विरोध करने की भी सबलता दी है। 'रुकोगी नहीं राधिका' (उषा प्रियंवदा) की राधिका उन्मुक्त और स्वतंत्र जीवन जीने की पक्षधर है। बन्धनों में बँधना उसे स्वीकार्य नहीं होता।

''उसने अपने परिवार के दोनों पुरुषों, पापा और बड़े दा को घोर व्यक्तिवादी कुछ हदों तक स्वार्थी महत्वाकांक्षी पाया था। स्त्रियों का आदर करते थे, उन्हें स्वतंत्रता भी देते थे पर वहीं तक जहाँ उनके द्वारा निर्मित सीमा रेखा न लाँघी जाये।''[13] स्पष्ट बात है कि पुरुषवादी समाज स्त्रियों को स्वतंत्रता देने का समर्थक है परन्तु उतना ही जहाँ तक आवश्यकता होने पर पुन: स्त्री को बेड़ियों में जकड़ते की क्षमता रखते हों लेकिन राधिका अपने समक्ष ऐसी स्थिति आने ही नहीं देना चाहती और एकाकी जीवन चुनती है—

''मैं स्वेच्छापूर्ण जीवन की इतनी आदी हो चुकी हूँ कि विघ्न सह नहीं पाती।''[14]

वर्तमान में पहले की अपेक्षा स्त्रियों की दशा काफी हद तक सुधरी है। परन्तु, जब तक यह स्थिति 80% से ऊपर से आँकड़े पार नहीं कर जाती इसे नगण्य की श्रेणी में ही रखना उचित होगा। महिलाओं के साथ भेदभाव की शुरुआत मूलत: घर-परिवार से होती है। कार्यक्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। महिला सहकर्मियों को हमेशा ही प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखा जाता रहा है। जहाँ महिलायें अधिकारी के पद पर कार्यरत हैं वहाँ के पुरुष सहकर्मियों के लिये महिला बॉस की अधीनता स्वीकार करना अपमान सरीखा लगता है लेकिन प्रसन्नता की बात यह है कि नई पौध इस मानसिकता से मुक्त है और स्त्रियों की योग्यता और कार्यकुशलता को स्वीकार कर रही है।

कामकाजी नारी के प्रति पुरुषों की संकीर्ण मानसिक विचार धारा उसकी सफलता की राह में रोड़े अटकाने के साथ अनेकानेक समस्याओं को जन्म देती है तथा उसका मनोबल भी क्षीण करती है। महिलाओं में उसका अभाव है परन्तु इस वर्ष की सिविल सेवा परीक्षा के परिणाम ने इस धारणा को पूर्णरूपेण निराधार सिद्ध कर दिया है। इस बार की इस परीक्षा के परिणाम के अनुसार प्रथम द्वितीय व तृतीय स्थानों पर महिलाओं का ही कब्जा रहा, देश का सर्वोच्च पद भी एक महिला ही सँभाल रही है, एअरफोर्स के 75 वर्ष पुराने इतिहास को बदलकर फ्लाइंग ऑफीसर कविता बराला ने इस बार राष्ट्रपति को सलामी दी तो मीरा कुमार ने उसे ग्रहण कर के नया इतिहास रच डाला। यदि अब भी पुरुष प्रधान समाज महिलाओं की योग्यता पर सन्देह करता है तो इसे मानसिक नेत्रहीनता और पारम्परिक हठधर्मिता का नाम ही दिया जा सकता है।

वैसे भी यदि वैश्विक मन्दी के इस दौर में देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना है तो महिलाओं की सक्रिय भूमिका को स्वीकारने की आवश्यकता है अन्यथा निश्चित ही देश की आधी कार्य क्षमता बर्बाद होती रहेगी। इसलिये समय की आवश्यकता अब यही है कि महिलाओं की क्षमता और योग्यता में पर्याप्त विश्वास दिखाया जाए। अपनी कहानी 'पड़ाव' में अल्पना मिश्र एक ऐसी महिला पात्र का किरदार रचती हैं जो परिवार के असहयोग के कारण बहुत आहत है, बच्चे को लेकर अलग रह रही है, अकेले ही जीवन की समस्याओं से लड़ रही है, पति का इन्तजार है परन्तु वास्तविकता को भी भली-भाँति जानती है कि जरूरी नहीं जितने सपने देखें जायें सब सच ही हो जायें—

''उसे आना ही चाहिये, क्यों कर भीतर उमड़ रहा है यह? जबकि मैं बिल्कुल नहीं चाहती कि मेरा जीवन, जो अब कुछ व्यवस्थित चल ही पड़ा है, डिस्टर्ब हो जाये। मैं अपनी नौकरी और बच्चे के साथ ठीक थी। जब ऐसा था ही, तब यह तड़प''[15]

नायिका के जीवन में कई बार अन्दर से हिला देने वाले दु:खों से लेखिका पाठकों का परिचय कराकर यह स्पष्ट सन्देश देती है कि आत्मनिर्भर महिला विपरीत परिस्थितियों में भी निर्वाह करने में स्वयं को सक्षम पाती है।

''अभी मुझे शादी ब्याह नहीं करना। कह दो मौसी को चैन से सोयें। पाँच साल तक मेरे लिये दूल्हा खोजने में अपने एड़ियाँ न रगड़ें। छोटे भाई-बहनों को अधर में छोड़ मैं अपना बैंड बाजा बजवाने बैठ जाऊँ?''[16]

चित्रा मुद्गल एक असाधारण लड़की के संघर्ष की कहानी गढ़ने में पूर्ण सफल हुई हैं। संजय कनोई और अन्जान वासवानी द्वारा मिले धोखे के बाद भी वह स्वयं को सँभालने में सक्षम पाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज में अपनी पहचान बनाने के लिये प्रयास और संघर्ष अपने बल पर किये जाने के पश्चात् ही जीत हासिल की जा सकती है।

निष्कर्षत: गौर करने लायक तथ्य यह है कि महिलायें शिक्षित और जागरूक बनें साथ ही माता-पिता और परिवार का यह कर्तव्य बनता है कि वे अपनी पुत्रियों को वह माहौल कर के दें जहाँ वे अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने के सपने संजो सकें।

जिस घर परिवार की स्त्रियाँ सुशिक्षित और अनुशासित होती हैं उस घर का आर्थिक के साथ-साथ मानसिक विकास भी उत्कृष्ट श्रेणी का होता है साथ ही स्तर भी ऊँचा होता है। यहाँ स्तर ऊँचा होने से तात्पर्य आर्थिक स्तर ऊँचा होने से नहीं है क्योंकि ऐसा कदापि आवश्यक नहीं है कि पैसे वाले घरों के व्यक्ति उच्चस्तरीय होते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. स्त्री : देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, मृणाल पाण्डे, आवरण पृष्ठ। 2. बाजार के बीच बाजार के खिलाफ, प्रभा खेतान, पृष्ठ-82 3. नारी प्रश्न, सरला माहेश्वरी, पृष्ठ-43 4. 'इरावती' में संकलित लवलीन की कहानी 'एक थी विजया' से, अक्टूबर-दिसम्बर 2006 5. वही, 6. वही, 7. वही, 8. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृष्ठ-12 9. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृष्ठ-158 10. ऐलान गली जिन्दा है, चन्द्रकान्ता, पृष्ठ-131 11. आपका बन्टी, मन्नू भण्डारी, पृष्ठ-6 12. आपका बन्टी, मन्नू भण्डारी, पृष्ठ-114 13. रुकोगी नहीं राधिका, ऊषा प्रियंवदा, पृष्ठ-52 14. रुकोगी नहीं राधिका, ऊषा प्रियंवदा, पृष्ठ-53 15. पड़ाव, अल्पना मिश्र। 16. आवां, चित्रा मुद्गल, पृष्ठ-228